संपादकीय

केस कहानी की रचना

आजकल चुनाव लड़ने वाले उम्मोदवारों के लिए चल-अचल संपत्ति का ब्यौरा देने के साथ-साथ अपने ऊपर चल रहे सभी मुकदमों का विवरण देना अनिवार्य हो गया है। ऐसे में किसी प्रत्याशी द्वारा अंकित की गई प्रविष्टि से जब जानकारी मिलती है कि फलॉ-फलॉ धाराओं के अन्तर्गत एक या एक से अधिक आपराधिक मामले उस पर दर्ज हैं, ता सर्वप्रथम क्या राय बनती है? उम्मीदवार की बात छोड़ें, किसी पर भी कोई आरोप लगता है, मामला चलता है तो पहली नजर में चेतन-अवचेतन मन-मस्तिष्क को लगता है कि आरोपी-मुजरिम ने अपराध किया होगा, पूरा नहीं तो कुछ न कुछ तो अवश्य किया होगा; अन्यथा कोई मुकदमा और उसमें भी आपराधिक यों ही किसी पर क्यों दर्ज होगा। निस्संदेह, कानूनी शब्दावली में वह तब तक दाषी नहीं कहलाता, जब तक अदालत दोषी सिद्ध न कर दे, सामाजिक-राजनीतिक हलकों में यह जुमला काफी चलता है। न्यायालय द्वारा दोषी या निर्दोष ठहराए जाने को लेकर न्यूनतम व अधिकतम समय-सीमा निर्धारित न होने के कारण सजा या बरी होने तक के समयान्तराल में सजा से भी बड़ी 'सजा' भुगतनी पड़ती है, समय व पैसे की बर्बादी से लेकर शारीरिक-मानसिक परेशानी का कोई ओर-छोर नहीं रहता। फिर कम-अधिक समय तक अदालत में मामला चलना अपराध होन और मुकदमा चलने लायक होने का ही प्रमाण है, इसका निर्णय याचिका के 'एडमिट' होने के वक्त शुरुआती सुनवाई में होता ह, जिसका अनुभवाश्रित सारतत्व यही है कि मुकदमे के रूप में कुछ भी चल सकता है और कुछ भी नहीं चल सकता। ठीक यही स्थिति थाने में भी होती है, जहॉ बिल्कुल फर्जी मामला भी दर्ज हो सकता है और काफी मशक्कत के बाद सच्ची आपराधिक घटनाएँ दर्ज होने से रह जाती हैं। दहेज उत्पीड़न और यौन उत्पीड़न कानून की धाराओं खासकर 498ए के अन्तर्गत दर्ज मुकदमों के झूठे-फर्जी होने के बहुतायत उदाहरण देखने, सुनने, पढ़ने के साथ ही आत्म-साक्ष्य द्वारा इनका अत्यंत निकट से सामना भी हुआ है। मामला कैसे गढ़ा जाता है - यह जिला एवं सत्र न्यायालय, वैशाली, हाजीपुर में दायर रिट-याचिका संख्या 1564/2013 को सरसरी तौर पर पढकर समझा जा सकता है। जिला न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए तीन बार पेश होने के उपरांत पब्लिक पॉसिक्यूटर के विरोध को आधार बताकर जमानत-अर्जी निरस्त किए जाने पर पटना उच्च न्यायालय में दायर जमानत-अर्जी में आरोपा के तथ्यवार जवाब व प्राकृतिक परिस्थितिजन्य पहले से उपलब्ध साक्ष्य तथा समय-समय पर अदालत द्वारा की गई निर्णयात्मक टिप्पणी को परखकर साधारण आदमी को भी तुरंत समझने में दिक्कत नहीं होगी कि पूरा केस प्रथमदृष्ट्या न केवल झूठा है, बल्कि खराब नीयत से षड्यंत्र के तहत दर्ज कराया अपने में आपराधिक कृत्य है; भले ही वह यह न जान पाए कि माजरा क्या है? वैसे तो कोई आरोपी अपने ऊपर लगे आरोप शायद ही कभी स्वीकार करता है, किन्तु यहॉ दावा है कि केस में उल्लिखित एक भी बात सत्य साबित हो जाए, या फिर जवाब के रूप मे दाखिल कोई एक तथ्य गलत साबित हो जाए, तो हम अपनी हार मान लेंगे, परंतु साबित होने का आधार वकीलों की थूथुनजोरी एवं न्यायालयी जड़ता की बजाय स्पष्टता और निष्पक्षता होना चाहिए। यहॉ महाभारत युद्ध के एक प्रसंग का उल्लेख प्रासंगिक है। कौरव पक्ष के कपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि क अतिरिक्त सारे योद्धाओं के वीरगति को प्राप्त हो जाने के उपरांत दुर्योधन सरोवर में छिप गया था। श्रीकृष्ण सहित पांडव ढूँढ़ते हुए वहॉ पहुँचकर उसे ललकारने लगे। युधिष्टिर ने उसके सामने प्रस्ताव रखा कि पॉचों पांडव में से किसी एक को युद्ध के लिए चुन ले और युद्ध का शस्त्र भी स्वयं तय करे। यदि वह अपने मनलायक शस्त्र से उस मनचाहे एक को परास्त कर देगा तो पाडव अपनी पराजय स्वीकार कर लेंगे। यह भयंकर रक्तपात के बाद जीती गई लड़ाई को तस्तरी में परोस कर दुर्योधन को सौंपने जैसा था। इस पर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को टोकते हुए कहा भी कि ऐसा कहने से पहले इसके परिणाम के बारे में अवश्य सोच लेना चाहिए था। स्वयं दुर्योधन ने भी

कहा कि आज तक वह युधिष्ठिर को जैसा मानता था, वह वैसा न होकर बड़ महान हैं। दुर्योधन ने शस्त्र वही चुना, जिसमें वह पारंगत था तथा लड़ने हेतु योद्धा भी महाबली भीम को चुना और जीवन में पहली बार शकुनी के कपट-जाल से मुक्त अपनी वीरता का परिचय दिया। भीम के अतिरिक्त अन्य पाण्डुपुत्र को गदायुद्ध में हराना दुर्योधन के लिए संभव हो सकता था। खैर, अदालत ऐसे दावां-प्रतिदावों से नहीं चलती ह। लेकिन क्या न्यायालय के लिए यह अनिवार्य नहीं होना चाहिए कि वह जो भी कहे, उसका साक्ष्य, तथ्य व आधार सामने रखे।

चकि पूरा मामला वकालती दावपेंच में बिल्कुल बेतरतीब ढंग से चल रहा है अथवा नहीं चलने दिया जा रहा है; ज्यादा सही यह है कि लगभग दो साल से बार-बार गिरफ्तारी वारंट जारी होने, जमानत पाने के एवज में सात हजार रुपए प्रति माह देने की अदालती शर्त के कारण जमानत न लेने-देने के इर्द-गिर्द ही घूम रहा है। फिलहाल केस का मूल पाठ तथा उसका बिन्दुवार जवाब यहाँ रखना जल्दीबाजी होगा, भविष्य में इसे सामने रखा जा सकता है; किसी विशेष उददेश्य से नहीं, बल्कि न्यायालय व जनअदालत से परे असली आत्म-अदालत में इसका मुकाबला करने के लिए। इसके सकारात्मक प्रभाव-परिणाम को अपेक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि ध्यानाकर्षण प्रस्तावों पर आज तक हमेशा उल्टा व नकारात्मक ही होता आया है। सवाल यह भी है कि केस स संबधित सारे तथ्य न्यायालय के समक्ष ही क्यों न रखे जाए? वहीं रखने से कुछ हानि-लाभ हो सकता है, बाहर रखने से क्या होगा? वकील की पैसा उगाही प्रवृत्ति, पेशे के प्रति वफादारी का अभाव, दिग्भ्रमित करके जानबूझकर मामले को उलझाए रखने की मनोवृत्ति आदि के कारण सही तथ्य अदालत में रख पाना मुश्किल होता है। सब केस में ऐसा नहीं होता, लेकिन अपना अनुभव सदैव ऐसा ही रहा है। बातूनी ताकिक क्षमता के अतिरिक्त किसी पर भरोसा न रखने वाले वकील ऊपरवाले से बचने के लिए आगाह करते हैं, जबकि लॉड तक हमारी आवाज नहीं जा पाती, जाते-जाते बदल जाती है या फिर सुनकर भी अनसुनी रहती है। अभी सिर्फ केस में जिक्र घटनाओं व आरोपों पर स्पष्टीकरण देने का हल्का प्रयास है। इसके अतिरिक्त बहुत सारी गंभीर-संगीन शिकायतें भी तो हो सकती हैं!

दहेज लेना और देना दोनों अपराध है, तो बिना दहेज लिए शादी करने वाले पर दहेज का मुकदमा दायर करना, चलना-चलवाना क्या है? क्या अदालतें, वकील और जज इसीलिए बने हैं? माना कि वकालत पैसा कमाने का जरिया है, जजी वकालत पेशे के बाद एक नौकरी है। दूसरी ओर, हरिद्वार के मंदिर में संपन्न हुई, दहेज न लेने-देने की एकमात्र शर्त वाली शादी में गुपचुप किसी भी तरह की थोड़ी-सी भी लेन-देन क्या अक्षम्य अपराध नहीं है? चाहे लड़की-लड़के का बाप यह काम कर या स्वयं लड़की या कोई दूसरा और मुकदमा चले दहेज को निषिद्ध करने वाले पर! 498ए स्त्री को संरक्षित करने वाला कानून है, पर पति-पत्नी के हर फसाद म इसका इस्तेमाल क्यों जरूरी ह? इस धारा क इस्तेमाल के लिए झूठी दहेज-कहानी की रचना क्या अपराध नहीं है? यह कहानी वकील गढ़ता हो, तब भी अपराध है। वकालत की पढाई एवं इस पेशे की पैदाइश इसीलिए हुई थी? इसलिए अगर यह साबित हो जाए कि वकील ने झूठी कहानी गढ़ी है, तो उसे भी दंडित किया जाना चाहिए। आखिर यह कैसा न्यायालय है, जिसका मेरुदंड वकील सबकी ऑखो के सामने झूठ की खेती बड़ी ठसक से करता है और कोई कुछ नहीं कर पाता। अभी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार, छात्रा, शिक्षको सहित पत्रकारा पर अदालत परिसर के अन्दर इन लोगो की दिनदहाड़े गुडागर्दी इन्हं कानून के पैरोकार होने देने से रोकने के लिए काफी है। ठीक है कि जेएनयू में आपत्तिजनक नारे लगे, जो किसी भी दृष्टि से शिक्षण संस्थानों के अन्दर लगने लायक नहीं थे, वहा से बाहर इसके मूल कारणों पर विचार हो सकता है। फिर भी ऐसे नारा से देश बनता-बिगड़ता नही है; अति उत्साह कह लें या फिर दिग्भ्रम, ऐसे कार्य भारतीय विश्वविद्यालयो म होते रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय म पढ़ते वक्त कई छात्रों का सामना हुआ करता था, जो इस तरह के कार्य खासकर नक्सलवादी साहित्य के प्रचार-प्रसार व कुछ हद तक उसकी गतिविधियो म सलिप्त थे। निजी फायदे के लिए उन्ह शिक्षकों द्वारा प्रोत्साहित-पुरस्कृत भी किया जाता था। वे सब आज विश्वविद्यालय के विभिन्न कालजा म अध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। कहा गया उनका नारा और कहॉ है उनका पुराना उग्र लिंक? यदि उस समय उनके विचारा व गतिविधियों को ज्यादा तरजीह देकर कार्रवाई हुइ होती

तो आज वे कहॉ होते? अस्तु, तब भी उन लोगो को तथा उनके विरोधी तथाकथित राष्ट्रवादियों को भी हम जैसो से दिक्कत जरूर रही।

498ए का दहेज उत्पीड़न मुकदमा दायर होने पर दोना पक्षों से साथ रहने की इच्छा पूछी जाती ह, सबसे पूछी जाती ह या नहीं पता नहीं। यदि साथ रहना या न रहने की आकांक्षा ही मुददा हो, तो फिर दहेज की मनगढ़न्त कहानी क्यो? क्या पति या पत्नी आवेदन देकर अपनी इच्छा बिना झूठी दहेज-कहानी के व्यक्त नहीं कर सकते, अदालत में नहीं जा सकते। अदालत आरोपी को आरोपों के संदर्भ में कोई बात रखने का मौका दिए बिना जमानत न दे या इस शर्त पर जमानत दे कि वह सात हजार रुपए प्रति माह उस परिवादिनी का दे, जो सरकारी सेवा में कमाऊ है। वह भी ऐसे मुकदमे में, जिसमें कही इसकी माग नही की गई है, तो यह सब क्या दर्शाता है? दूसरी ओर, आरोपी का रोजगार पत्नी पक्ष की आपराधिक चालबाजी-कारगुजारी के कारण ठप हो चुका है। उसका स्टेट बक ऑफ इंडिया को खाता संख्या अदालत के अवलोकलार्थ दी गई है। इससे पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय म आरोपी द्वारा दायर रिट-याचिका सख्या सिविल मि. 63311/2010 में कालेज प्रबधन व उतर प्रदेश शासन-प्रशासन की कारगुजारी की जॉच और बकाया राशि के भुगतान की मॉग को 'कलरफुल स्टोरिज' बताकर अस्वीकृत किया गया। हमारे वकील ने ही झूठा-सच्चा दूसरी पार्टी द्वारा पन्द्रह-बीस लाख रुपए देने का ढिढ़ोरा पीटा था, जिसे साफ तौर पर मना करके हारने तथा जीतने की दोनों ही संभावनाओं में मुकदमा लड़ने भर के लिए कह दिया गया। पटना उच्च न्यायालय द्वारा विरोधी पक्ष के वकील के हवाले से आरोपी के व्यवहार को 'इक्सेन्ट्रिक' लिखा गया है, बेशक यह पटना उच्च न्यायालय का अपना आकलन नही है, फिर भी अदालत को 'कलरफुल' व 'इक्सेन्ट्रिक' जैसी उल्टी-सीधी अनेकार्था शब्दावली से परहेज करना चाहिए। अदालत अपनी समझ से सकारात्मक-नकारात्मक कोई भी टिप्पणी कर सकती है, लेकिन द्विअर्थी शब्दावली प्रशासनिक-न्यायालयी भाषा क लिए तनिक भी उपयुक्त नहीं, बल्कि भयंकर दोष है, बेशक इनका इस्तेमाल माननीय लॉड लोगों द्वारा ही क्या न किया जाए। साहित्य मे 'श्लेष' का प्रयोग एक साथ कई अर्थो को द्योतित करने के लिए किया जाता है और वहॉ यह शोभा बढ़ाने वाला अलंकार होता है।

गॉव-समाज, देश-दुनिया के सभी क्षेत्रा मे, परंपरागत रूप से वर्जित कार्यो में भी महिलाओ की उपस्थिति लगातार बढ़ने के साथ कार्य के स्वरूप मे कितना बदलाव आया है - यह अनुभव-अनुसधान का विषय है, परतु सभी तरह के कदाचारा, भ्रष्टाचारा, अपराधो म भी महिलाओ की उपस्थिति बेतहाशा बढ़ती जा रही है और जो अपराध केवल महिलाएँ कर सकती ह, उसमें भी अप्रत्याशित सख्यात्मक बढोतरी हुई है। ऐसे म ऐसी-वैसी-कैसी भी महिला को ऑख मदकर या जानबझकर 'संरक्षण' वह भी निर्दोषता-कर्तव्यनिष्ठा के जज्बे की कीमत पर दुष्ट व पतित स्वार्थ वाली घटिया स्त्री-पुरुष मानसिकता का ही संरक्षण है। उदाहरणस्वरूप, कालेज के अध्यापन के दिनों में जब मेरी वेतनवृद्धि नहीं की जा रही थी, तो उस समय उस कालेज की प्राचार्या महिला ही थीं और यह सब उनके महिलापन के अनुकूल था। तब तो 498ए या इस तरह का कोई बहाना भी खोजा नहीं जा सका था। आज भी कोई पुरुष अगर किसी स्त्री को देखता है तो कहीं न कहीं डरता है कि पता नही, वह कैसा मानेगी; लेकिन यदि कोई युवती-स्त्री पुरुष पर निगाह मारती है, तब वह यह मानती है कि पुरुष अनुगृहीत-एहसानमंद होगा ही, कम से कम बुरा तो नहीं मान सकता, जो बुरा मान गया वह पुरुष नही; बुरा मानने का नैसर्गिक अधिकार केवल स्त्रियों को है। इस प्रकार स्वय स्त्री भी अपने को विशेष चीज मानती है, ऐसा ही कभी दूसर मानते ह तो बुरा कैसे? इसी प्रकार स्त्री कई बार चरित्रवान पुरुष को बेइज्जत करने के लिए स्वयं की बेइज्जतो करती-करवाती है, अपनी बेइज्जती कराकर अपने निकटतम पुरुष की प्रतिष्ठा गिराने की सोचती है, सफल-असफल कोशिश करती है। यह उसके लिए एक अस्त्र की तरह होता है। यहॉ ध्यान में रखना आवश्यक है कि जैसे सारे वकील-जज एक जैसे नहीं होते, वैसे ही सभी स्त्री-पुरुषों का एक-दो ढर्रे से तथा एक ही भाव में नहीं तौला जा सकता। अंदर-बाहर की खचरई-बदमाशी की प्रारंभिक पहल महिला करे या पुरुष, दोनो समान रूप से अपराधो होते है। ऐसी पहल, शरारत व बदनामी का कोई मतलब नही जो प्रेम नहीं तो घृणा की चरम स्थिति तक न पहुँच सके। जहॉ झगड़ा कम, रगड़ा ज्यादा

होता है, वहॉ दोराहे वाली वाली स्थिति सदैव बनी रहती है और यह लाइलाज भी होती है। जीवन मूल्य विरोधियों का महिला, पिछड़ा, दलित, अल्पसख्यक या कोइ और जामा पहनाकर मुख्य मुद्दा को दूसरी ओर मोड़ देना क्या शातिर दिमाग द्वारा उन्हे मोहरा बनाकर अपने शुरु से लेकर अंत क दुष्कार्यो पर पर्दा डालना नही है? 498ए के दहेज उत्पीड़न केस के अन्तर्गत सृजित दहेज-कहानी रूपी कच्चे माल स मामला यदि चलने लायक नहीं लगता तो शुरू में ही उसे घुमाकर मोटी रकम के भुगतान और अंततः तलाक के रूप में पक्का माल तैयार करने में अदालत के अंग-उपांग लग जाते हैं, शायद इस स्थिति म वकीलों को कुछ ज्यादा कमीशन मिलता हो। भारतीय न्यायालयों की परंपरा है कि किसी रिट म की गई माग को ही माना जाता है या उसे नियम के आधार पर अस्वीकार किया जाता है, अलग से कोई फैसला अदालतें सामान्यतः नहीं देती, हाईप्रोफाइल और मीडिया की सुखियों में आ चुके मामलों और स्वयं सज्ञान वाले मसलो की बात दूसरी ह। 498ए क केस म आरोप पर सुनवाई से पूव पैसे देकर पुरस्कृत करने का आदेश आपातकालोन ज्यादती की तरह है, क्या यह आरोपी को अपना पक्ष रखने से रोकना नहीं है? जहॉ पैसे के लिए आपातस्थिति है, वहा कुछ और गीत गाया जाता है और जहॉ जरूरत नही, वहा पैसे की चाप चढ़ाई जातो है। यह ऐसे ही है कि सरकार व बैंक क करोड़ों-अरबों के कर्ज बड़े जालसाज आराम से डकार जाते हैं, किन्तु कोई गरीब आदमी पॉच-दस हजार का ऋण वापस नहीं कर पाता ता शासनिक-प्रशासनिक धरपकड़ वाली सक्रियता देखते ही बनती है। फिर आदमो क्या करे -

स्वत्व मॉगने स न मिले संघात पाप हो जाए
बोलो धर्मराज शोषित वे जिएँ कि मिट जाएँ?

जाति की जिज्ञासा

दिल्ली विश्वविद्यालय के कला संकाय भवन के ऑगन में तीन-चार प्राध्यापकों की उपस्थिति में सबसे वरिष्ठ प्रोफेसर, तदर्थ रूप में कालेज में पढ़ा रहे एक शोधार्थी की जाति मुझसे पूछने लगे। उत्तर में कहा कि व्यक्तिगत रूप से उसके बारे में जानकारी नहीं है और न उसकी जाति के बारे में पक्का पता है, फिर भी उसके सरनेम में शर्मा और द्विवेदी होने के कारण अनुमान है कि वह बाहूमण नहीं तो भूमिहार हागा। चकि सरनेम में दोनों है, इसलिए उसके बाहूमण होने की ही सर्वाधिक संभावना है। प्रोफेसर साहब खुद भी ब्राहूमण ही थे, जन्म से तो थे ही, कर्म से भी थे, क्योंकि पठन-पाठन के क्षेत्र में ही कार्यरत थ। प्राचीन काल से ब्राहूमणों के लिए मुख्यतः यही काम नियत रहा है। लेकिन बाहूमणत्व एक विराट व व्यापक भावस्थिति है, जिसके अभाव में किसी को ब्राहूमण कहना ब्राहूमणत्व के साथ अन्याय है। अक्सर अपन परंपरागत सकारात्मक जातीय भावों, गुणों से रिक्त ही नहीं, बल्कि उनके उलट आचरण करने वाले लोग ही अपनी जाति का गौरवगान तथा शेखी बघारते हैं। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि मै भी बिहार का था और शोधार्थी भी बिहार का, फिर भी मैं उसकी जाति नहीं जानता। वे हिन्दी के वैसे धाकड़ प्राध्यापक थे, जिसके लिए कई महीने पूर्व 'जनसत्ता' में डा. कमल किशोर गोयनका ने लिखा है कि हिन्दी का प्रोफेसर सर्वज्ञ होता है। यह बात हिन्दी के एक पोफेसर ने ही गोयनका जी को बताई थी। खैर, प्रोफेसर साहब ने बड़े शैक्षणिक-सामाजिक अनुभव इकटूठे किए थे, जिनके आधार पर उन्हें जातीय सोच का बोध भी था। उन्होंने बात-बात में कहा कि भूमिहारों पर लोग कम विश्वास करते हैं, यह बात स्वयं भूमिहार भी कहते-मानते हैं। इस पर मैंने बचपन में सुनी एक लोक-कहानी सुनाई - ''एक व्यक्ति जाति के समाजशास्त्र पर पुस्तक लिख रहा था, जिसमें वह सभी जातियों की विशेषताओं व गुण-दोष का विवेचन कर रहा था। वह खुद सवर्ण था, इसलिए चार प्रमुख सवर्ण जातियों - बाहूमण, राजपूत, भूमिहार और कायस्थ के पति उसका विशेष लगाव था। उसने किताब का चार पन्ना खाली रखा, क्योंकि वह इन जातियों के कुछ कमजोर पक्षों को सामने लाने में संकोच कर रहा था, लेकिन व्यापक सामाजिक सच को उजागर करना भी आवश्यक था। पूछने पर उसने बताया कि बाहूमण वाला पन्ना खाली है,

क्योंकि आज तक उसे कोई ऐसा बाहूमण नहीं मिला जो थोड़ा-बहुत लोभी न हो। एक भी ब्राहमण मिल जाए जो लोभी न हो, तो वह लिख देगा कि बाहूमण लोभी नहीं भी होते। राजपूत वाला खाना खाली है, क्योंकि आज तक कोइ ऐसा राजपूत नहीं मिला, जो कम-अधिक मात्रा में मूर्ख न हो। यदि एक भी मिल जाए, तो वह लिख देगा कि राजपूत मूर्ख नहीं भी होते। कायस्थों के लिए निर्धारित कुछ स्थान रिक्त है, क्योंकि अब तक कोई एसा कायस्थ नहीं मिला, जो चालाक-होशियार न हो। एक भी ऐसा मिल जाएगा तो वह लिख देगा कि कायस्थ चालाक नहीं भी होते। भूमिहारों के लिए कुछ स्थान छोड़ा गया है, क्योंकि उसे कोई एसा भूमिहार नहीं मिला, जिस पर पूरा भरोसा किया जा सके। एक भी ऐसा मिल जाएगा तो लिख दिया जाएगा कि भूमिहार विश्वास के पात्र भी होते हैं।'' वहाँ उपस्थित प्रायः सभी लोग इन्ही चारों जातियों में से थे। अत्यधिक पढ़े-लिखे होने की वजह से हँसती-मुस्कराती सहमति सबने व्यक्त की, किंतु किसी ने अपनी कचोट प्रकट नहीं की। इस पर सबने अपनी जातियों के बारे में आत्मचिंतन भी अवश्य किया होगा और परचिंतन तो खैर आदमी का स्वभाव है ही।

❖